12

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा तत्व
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के संदर्भ में

पवन सिन्हा*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अपने आधार-सिद्धांत के संदर्भ में शिक्षा के लक्ष्य को निर्धारित करते हुए स्पष्टत: उल्लेख करती है कि "शैक्षिक प्रणाली का उद्देश्य अच्छे इंसानों का विकास करना है।" यह लक्ष्य सार्वभौमिक भी हो सकता है और सार्वकालिक भी, क्योंकि प्रत्येक समाज एवं राष्ट्र को स्वयं के विकास के लिए 'अच्छे इंसानों' की आवश्यकता होती ही है! चूँकि शिक्षा एक सामूहिक दायित्व के रूप में 'व्यष्टि से समष्टि' तक की अनवरत यात्रा करती है अत: शिक्षा का संस्कार प्राप्त करने में परिवार के सदस्यों के साथ-साथ शिक्षक, विद्यालय, समवयस्क समूह और समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। परंतु फिर भी सीखने का दायित्व मुख्यत: अधिगमकर्ता अर्थात सीखने वाले पर आता है और विशेष रूप से शिक्षक की भूमिका एक साधनसेवी या सुगमकर्ता की भूमिका के रूप में देखा जाता है। शिक्षा और समाज के परस्पर संबंध के महत्व को स्वीकार करते हुए कहा जा सकता है कि शिक्षा समाजपयोगी होती है और देश, काल, वातावरण के अनुसार स्वयं को गढ़ती है। अत: शिक्षा की एक निश्चित परिभाषा और एक निश्चित लक्ष्य निर्धारित करना भी कतिपय जटिल कार्य है, क्योंकि परिवर्तित होते समय और समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा का स्वरूप भी परिवर्तित होता है। शिक्षा और समाज का परस्पर यह 'सहभाव' वाला संबंध शिक्षा को नया 'कलेवर' प्रदान करता है। स्वामी विवेकानंद का जीवन दर्शन और शिक्षा दर्शन– दोनों ही उनके अनुभूत सत्य और भ्रमणशील प्रवृत्ति से उपजे अनुभव का परिणाम है। इस अर्थ में यथार्थपरक क्षेत्र से सिद्धांत और पुनः सिद्धांत से यथार्थपरक क्षेत्र तक की यात्रा में ही शैक्षिक आनंद का भाव निहित है। जीवन के प्रति जो उनका चिंतन रहा है उसी चिंतनपरक दृष्टि से वे शिक्षा को भी देखते हैं। जीवन का लक्ष्य स्वयं का साक्षात्कार है तो शिक्षा का भी लक्ष्य इस साक्षात्कार को फलीभूत करना है। अत: शिक्षा के मूल स्वरूप को समझने के लिए जीवन के मूल स्वरूप को समझना होगा, क्योंकि शिक्षा जीवन से अभिन्न रूप से संबद्ध है। तो प्रश्न उठता है कि अंतत: शिक्षा क्या है? वह स्वयं में अनुभव का परिणाम है अथवा अनुभव की निरंतर चलने वाली प्रक्रिया? यह बिंदु भी चिंतनीय है कि शिक्षा बाह्य तत्व है अथवा आंतरिक तत्व? यदि शिक्षा बाह्य तत्व है तो क्या वह बाह्य उपादानों पर निर्भर करती है?

**आचार्य*, राजनीतिशास्त्र विभाग, मोतीलाल नेहरू कॉलेज, नई दिल्ली 110 021

यदि शिक्षा आंतरिक शक्तियों का बाह्य प्रस्फुटन है तो उसकी शिक्षा-शास्त्रीय प्रक्रिया क्या होगी? यह लेख स्वामी विवेकानंद की दृष्टि से शिक्षा तत्व को समझने, व्याख्यायित करने, विस्तार देने और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 की अनुशंसाओं के क्रियान्वयन हेतु मार्ग प्रशस्त करता है। साथ ही यह लेख शिक्षाशास्त्रीय उपादानों के संबंध में भी चिंतन की उर्वर भूमि का निर्माण करता है ताकि यह विचार किया जा सके कि शिक्षा तत्व की अवधारणा के अनुरूप उसकी शिक्षाशास्त्रीय प्रक्रिया क्या होगी?

शिक्षा तत्व

जीवन और शिक्षा के मध्य एक गहरा संबंध है। यह संबंध भारतीय संविधान में भी अत्यंत सहजता से देखा जा सकता है। जहाँ एक ओर भारत का संविधान (26 नवंबर, 2021 को यथाविद्यमान; पृष्ठ 11) (भाग 3 - मूल अधिकार) अनुच्छेद 21 के अंतर्गत व्यक्ति को जीवन जीने का मौलिक अधिकार देता है– "प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण–किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।" वहीं दूसरी ओर भारत का संविधान अनुच्छेद 21ए के अंतर्गत शिक्षा का मौलिक अधिकार देते हुए कहता है— "राज्य, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले सभी बालक और बालिकाओं के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने का ऐसी रीति में, जो राज्य विधि द्वारा, अवधारित करे, उपबंध करेगा।" ये दोनों प्रावधान इस ओर संकेत करते हैं कि जीवन और जीवन से जुड़ी शिक्षा दोनों का गुणवत्तापूर्ण होना आवश्यक है। इतना ही नहीं, जीवन और शिक्षा की सार्थकता भी इसी में है कि वे एक-दूसरे को पोषित करते रहें। इस अर्थ में एक सार्थक जीवन में शिक्षा का भी सार्थक होना आवश्यक है। इस विचार बिंदु को इस प्रकार भी अभिव्यक्त किया जा सकता है कि शिक्षा की सार्थकता इसी में है कि वह जीवन को उत्कृष्ट रूप से जीने में सहायता करे और जीवन की उत्कृष्टता और सार्थकता इसमें निहित है कि जब वह अपने समाज, राष्ट्र और पूरे विश्व के निर्माण की दिशा में अग्रसर करती है। इसका अर्थ है कि शिक्षा वही है, जिसमें 'निर्माण' का तत्व समाहित है। स्वामी विवेकानंद के शिक्षा संबंधी विचारों में इसी 'निर्माण' तत्व के दर्शन होते हैं। इस 'निर्माण' का वितान व्यक्ति के चरित्र निर्माण से लेकर राष्ट्र निर्माण तक फैला हुआ है। इस संदर्भ में सलूजा (2023, पृष्ठ 417) का मानना है कि स्वामी विवेकानंद के शिक्षा संबंधी विचार 'राष्ट्र को आह्वान' के रूप में ही भासित होते हैं। उनकी संपूर्ण शिक्षा का 'ताना-बाना' तत्कालीन राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिए 'आत्मविश्वास' के साथ 'आत्मबल' का संचय करना था—

"सुप्त शक्ति
तुम
हे मानव! उठो, जागो और
प्रयाण करो!"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी शिक्षा की अवधारणा के मूल में निहित इसी निर्माण तत्व का उल्लेख करती है, जिसके प्रमाण स्पष्टत: देखे जा सकते हैं—

“शिक्षा पूर्ण मानव क्षमता को प्राप्त करने, एक न्यायसंगत और न्यायपूर्ण समाज के विकास और राष्ट्र के विकास को बढ़ावा देने के लिए एक मूलभूत आवश्यकता है।”

(राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ 3);

“यह राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21वीं शताब्दी कि पहली नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है।”

(राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ 4); एवं

“शिक्षा का उद्देश्य केवल संज्ञानात्मक समझ न होकर चरित्र निर्माण और 21वीं शताब्दी के मुख्य कौशल से सुसज्जित करना है।”

(राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, पृष्ठ 17)

समाज और राष्ट्र निर्माण से प्रतिबद्ध शिक्षा का यह दायित्व तब पूर्ण होगा जब व्यक्ति ‘व्यष्टिपरक’ आकांक्षाओं से ऊपर उठकर ‘समष्टिपरक हिताय’ की भावना से ओत-प्रोत होता है। यह समष्टिपरक हिताय वस्तुत: सर्वजन हिताय के पथ पर ले जाता है और यह तभी संभव होता है जब व्यक्ति मानवीय मूल्यों से संस्कारित हो। चरित्र निर्माण, नैतिकता, मानवीयता और संवैधानिक मूल्यों का समर्थन करने वाली इस शिक्षा-नीति का शिक्षाशास्त्र शिक्षार्थियों में समानुभूति; दूसरों की भावनाओं और विचारों का सम्मान; स्वतंत्र, तार्किक और वैज्ञानिक चिंतन; लोक शिष्टाचार; सार्वजनिक संपत्ति के लिए सम्मान; दायित्व निर्वहन, विविधता का सम्मान और उत्सव; न्याय आदि के गुणों का विकास करने पर बल देता है। इन सभी नैतिक और संवैधानिक मूल्यों में सर्वोपरि है— लोकतांत्रिक मूल्यों का विकास। शिक्षा को ‘लोकतंत्र का पाँचवाँ स्तंभ’ मानने वाली दृष्टि यह तर्क देती है कि ‘लोकतंत्र’ में दूसरों का सम्मान भी है और विविधता को स्वीकार करने की प्रवृत्ति भी।

शिक्षा का लक्ष्य

शिक्षा का लक्ष्य मानव जीवन के लक्ष्य से अलग नहीं हो सकता। शिक्षा का लक्ष्य भी ऐसे मानव का निर्माण करना है, जो हर प्रकार से स्वतंत्र हो और स्वतंत्र रूप से निर्णय भी ले सके। मात्र जानकारी प्राप्त करने से जीवन का निर्माण नहीं होता, जीवन का निर्माण होता है— सार्थक कर्म से! स्वामी विवेकानंद जी न केवल जीवन के निर्माण की बात करते हैं बल्कि वे मनुष्य-निर्माण की भी बात करते हैं। इस संदर्भ में यह सवाल उठता है— जीवन-निर्माण क्या है और मनुष्य-निर्माण क्या है? जीवन-निर्माण में स्वाभिमान, गरिमा और गुणवत्ता शामिल है। यही तत्व मनुष्य-निर्माण में सम्मिलित हैं, साथ ही इसमें एक तत्व और सम्मिलित होता है और वह है— समाज-निर्माण, राष्ट्र-निर्माण में योगदान। चरित्र-निर्माण का संबंध इन सभी से है। मनुष्य-निर्माण में विश्वास रखने वाले स्वामी विवेकानंद के शिक्षा-दर्शन की धुरी स्वयं मनुष्य ही है। शिक्षा अंतत: मनुष्य जीवन के काम आएगी और उसके जीवन को उत्कृष्ट बनाएगी। यही करण है कि मनुष्य-निर्माण की अवधारणा का समर्थन करते हुए यह विचार स्थापित करते हैं कि “सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास

का उद्देश्य ‘मनुष्य-निर्माण’ हो! सारे प्रशिक्षणों को अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस अभ्यास से ‘मनुष्य’ की इच्छा-शक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम है शिक्षा... “हम ‘मनुष्य’ बनाने वाले सिद्धांत ही चाहते हैं। हम सर्वत्र, सभी क्षेत्रों में, ‘मनुष्य’ बनाने वाली शिक्षा ही चाहते हैं” (विवेकानंद, 1956;4)। यह उद्धरण स्पष्ट करता है कि मनुष्य-निर्माण में उसकी इच्छाशक्ति बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है और इच्छाशक्ति भी ऐसी जो फलदायी हो! यहाँ फलदायी होने का अर्थ है कि मानव मात्र और राष्ट्र को उसका लाभ मिल सके। स्वामी विवेकानंद जी का संपूर्ण शिक्षा दर्शन मानव के इर्द-गिर्द ही घूमता है और मानव मात्र के साथ-साथ मानव मात्र की सेवा से ओत-प्रोत शिक्षा ही उपयोगी है। जब हम मानव होने की बात करते हैं तो उसमें मानवीय मूल्यों का होना भी अनिवार्य है। शिक्षा ऐसी हो जो दूसरों के अस्तित्व और स्वाभिमान और गरिमा का सम्मान कर सके। दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान करना भी ज़रूरी है। एक स्थान पर वे कहते हैं कि “यूरोप के अनेक नगरों की यात्रा करते समय वहाँ के गरीबों तक के लिए अमन-चैन और शिक्षा की सुविधाओं को देखकर मेरे मन में अपने देश के गरीबों की दशा का दृश्य खिंच जाता था और मेरी आँखों से आँसू झरने लगते थे। ऐसा अंतर क्यों हुआ? उत्तर मिला— शिक्षा! शिक्षा से आत्मविश्वास आता है और आत्मविश्वास से अंतर्निहित ब्रह्मभाव जाग उठता है” (विवेकानंद, 1956;4)। यह सत्य है कि हमारी अपनी अवस्था में ‘अच्छे-बुरे’ का कारण शिक्षा है। एक सबसे महत्वपूर्ण बिंदु यह है कि शिक्षा बच्चों में आत्मविश्वास विकसित करती है और यह आत्मविश्वास सशक्त व्यक्तित्व का एक अहम हिस्सा है। शिक्षा मनुष्य मात्र की अवस्था को उच्चतम स्थिति में अवस्थित करने का गुण रखती है। अगर स्वामी विवेकानंद शिक्षा और गरीबी के बीच किसी भी प्रकार के संबंध को देखकर करुणा से भर उठते हैं तो इसका यह अर्थ भी है कि वे मनुष्य से गरिमामय जीवन जीने की अपेक्षा भी करते हैं, उन्हें यह लगता है कि शिक्षा से व्यक्ति अपनी स्थिति को बेहतर बना सकता है । जहाँ तक आत्मविश्वास का संदर्भ है, वे प्रत्येक प्राणी को आत्मविश्वास से भरपूर एक मज़बूत व्यक्तित्व के रूप में देखना चाहते हैं। यह आत्मविश्वास अनेक अन्य गुणों के उद्‌भव का कारक है और जीवन में संघर्ष करने का प्रेरणा स्रोत। स्वामी विवेकानंद जी जब यह कहते हैं कि शिक्षा तो भीतर ही है, उसकी अभिव्यक्ति बाहर होती है तो संपूर्ण शिक्षा का मर्म समझ आ जाता है, और वह यह है कि शिक्षा समस्त शक्तियों के पूर्ण विकास और उसकी बाह्य अभिव्यक्ति पर बल देती है। चूँकि गुण या शक्तियाँ सुप्तावस्था में मनुष्य के भीतर ही विद्यमान हैं, अत: शिक्षा उन सुप्त शक्तियों में चेतना या जागृति का कार्य करती है। जिद्दू कृष्णमूर्ति भी यही मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अनूठी वृत्ति या योग्यता होती है (बुनियादी स्तर की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2022; पृ.सं. 22–24)। अत: शिक्षा सुप्त शक्तियों के जागरण का साधन है या फिर अंतत: वह चैतन्यता उत्पन्न करने का विषय है। यह विचार इस बिंदु का भी द्योतक है कि अनेकश: मनुष्य को स्वयं की क्षमताओं,

शक्तियों का ज्ञान नहीं होता और शिक्षा के माध्यम से स्वयं के विषय में ज्ञान प्राप्ति की जा सकती है।

जैसा की स्पष्ट है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और स्वामी विवेकानंद की 'मनुष्य' के निर्माण संबंधी यह दृष्टि एक प्रकार से प्राचीन भारतीय शिक्षा-व्यवस्था में निहित 'मनुर्भव' अर्थात मनुष्य बनने-बनाने की शिक्षा-प्रक्रिया को ही द्योतित करती है। यही शिक्षा सार है और शिक्षा-तत्व भी।

'मनुर्भव' बनने का एक परोक्ष अर्थ यह भी है कि हम स्वयं को पहचानें। बुनियादी स्तर की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2022 स्वामी विवेकानंद जी के शिक्षा संबंधी विचारों का उल्लेख करते हुए शरीर, मन और आत्मा की समग्रता पर बल देती है। उनके लिए, मानव अस्तित्व और मानवीय संभावनाओं का मूल आत्मा (स्व) और आत्मज्ञान में निहित है। आत्मज्ञान पर उनका इतना ज़ोर देने के कारण महत्वपूर्ण हैं। पहला, हम जो हैं, उसका सारतत्व आत्म है इसलिए आत्मज्ञान की महत्ता को नकारा नहीं जा सकता; दूसरा, हम सभी इंसानों के पास आत्म (सेल्फ़) होता है और इसलिए व्यक्ति और दुनिया/वस्तु दोनों सार्वभौमिक हैं; और तीसरा, यदि आत्म, मानव अस्तित्व का सारतत्व है, तब इसका ज्ञान मानव की संपूर्णता के लिए एक शर्त की तरह होगा। इस महत्त्वपूर्ण अंतर्दृष्टि पर आधारित शिक्षा का आदर्श, हमारे सारतत्व की अभिव्यक्ति, पूर्णता के बीज बोने और सभ्यतागत आदर्शों की पुनः परिभाषा के लिए नींव रखने की ओर मार्ग प्रशस्त करेगी"(बुनियादी स्तर की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2022; पृ. 23)। इसलिए, उनका मानना है कि शिक्षा मनुष्य में पहले से ही छिपी हुई सच्ची पूर्णता की अभिव्यक्ति है। स्वामी विवेकानंद के इस कथन में अनेक शब्द महत्वपूर्ण हैं जो कहीं न कहीं उनके विचार बिंदुओं के प्रस्फुटन की ओर संकेत करती है— आत्म (सेल्फ), मानव अस्तित्व, आत्मज्ञान आदि। यह आत्म 'व्यष्टि' से संबद्ध है लेकिन इसकी पूर्णता 'व्यष्टि' में ही होती है। अत: शिक्षा 'व्यष्टि-रूपी' होते हुए भी स्वयं में 'समष्टि रूपी' ही है। इस प्रकार शिक्षा का मूल लक्ष्य राष्ट्र-हित और कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है। यह सत्य है कि किसी भी देश के नागरिक एक शिक्षा-प्रणाली को खड़ा करते हैं और उसके बाद वह शिक्षा-प्रणाली देश के नागरिकों को खड़ा करती है। यह परस्पर चलने वाली एक स्वाभाविक प्रक्रिया है और यह प्रक्रिया जितनी तीव्र गति से चलती है, उतनी तीव्र गति से राष्ट्र उन्नत होता है, राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति संवर्धित एवं संरक्षित होते हैं। शिक्षा का स्वभाव ही ऐसा है कि वह कभी स्थिर हो ही नहीं सकती और न ही उसे विद्यालय की चहारदीवारी के भीतर बाँधा जा सकता है। रुका हुआ आदमी और रुका हुआ जल अंतत: 'मर' जाते हैं। वे अपना मूल्य खो देते हैं।

रचनात्मक और आलोचनात्मक चिंतन

स्वामी विवेकानंद जी ने शिक्षा के संदर्भ में जीवन-निर्माण, मनुष्य-निर्माण और चरित्र-निर्माण पर बल दिया है। उनके अनुसार शिक्षा और जानकारी में अंतर होता है और शिक्षा जानकारी मात्र नहीं है। शिक्षा में अवधारणात्मक समझ महत्वपूर्ण है जो रचनात्मक और आलोचनात्मक चिंतन को संबल

प्रदान करती है। "शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूँस दिया गया है और जो आत्मसात हुए बिना वहाँ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। हमें उन विचारों की अनुभूति कर लेने की आवश्यकता है, जो जीवन-निर्माण, मनुष्य-निर्माण तथा चरित्र-निर्माण में सहायक हो। यदि तुम केवल पाँच ही परखे हुए विचार आत्मसात कर, उनके अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लेते हो, तो तुम एक पूरे ग्रंथालय को कंठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो। यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े संत हो जाते और विश्वकोश महान ऋषि बन जाते"(विवेकानंद, 1956; 3)। शिक्षा के संबंध में यह विचार आज भी प्रासंगिक और उपयोगी है और बार-बार इस बात की चेतावनी देता है कि कहीं हम शिक्षा को विद्यालय और विषयगत जानकारी का पर्याय न मान बैठें। 'सूचनाओं का विस्फोट' इतना अधिक और तीव्र गति से होता है कि उन्हें संभालने की कुशलता अनिवार्य रूप से चाहिए। अत: जानकारी ज्ञान नहीं है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी एक ओर रचनात्मकता, तार्किक सोच, तार्किक निर्णय लेने और नवाचार को प्रोत्साहित करने पर बल देती है तो वहीं दूसरी ओर केवल परीक्षा के लिए पढ़ाई तथा 'रटंत पद्धति' के बजाय अवधारणात्मक समझ पर बल देती है। एक स्थान पर स्पष्ट रूप से उद्धृत किया गया है कि शिक्षा ऐसी हो जो बच्चों में समस्या-समाधान और तार्किक एवं रचनात्मक रूप से सोचने की प्रवृत्ति का विकास करे। बच्चे कुछ नवीन चिंतन कर सकें, नवीन जानकारी को नई और बदलती परिस्थितियों या क्षेत्रों में उपयोग में ला सकें। इसके लिए आवश्यक है कि हमारी शिक्षण-प्रक्रिया शिक्षार्थी-केंद्रित हो, उसमें जिज्ञासा, खोज, अनुभव और संवाद के लिए पर्याप्त स्थान हो और जो बच्चों को तर्क संगत और समन्वित रूप से देखने-समझने में सक्षम बना सके।

स्वामी विवेकानंद जी जब शिक्षा को जानकारी मानने से इनकार करते हैं तो उसके लिए यह तर्क देते हैं कि "यदि शिक्षा का अर्थ जानकारी ही होता, तब तो पुस्तकालय संसार में सबसे बड़े संत हो जाते और विश्वकोश महान ऋषि बन जाते।" यह तर्क अत्यंत वैध है और विचारणीय भी है। यदि गहराई से विचार करें तो यह बिंदु उभरकर आता है कि पुस्तकें केवल हमें विविध संदर्भ, विविध स्थितियाँ, विविध प्रतिक्रियाएँ, विविध प्रकार की जानकारी ही देती हैं लेकिन उस जानकारी को अपने जीवन में आत्मसात करने का दायित्व पाठक का है या जानकारी प्राप्त करने वाले का है। यहाँ जानकारी या सीखे हुए को आत्मसात करने का अर्थ है— उसे अपने आचरण में लाना। आचरण के अभाव में व्यक्ति भीतर से खोखला होता चलता है और जब व्यक्ति खोखला होता जाता है तो उसका चरित्र भी खोखला और निर्बल होता जाता है। अत: चरित्र का अर्थ उचित आचरण से है जहाँ स्वयं को 'अच्छा' बनाने के साथ-साथ 'उपयोगी बनाने पर बल दिया जाता है। उदाहरण के लिए हम महात्मा गांधी के श्रम की महत्ता के बारे में पढ़ते हैं लेकिन स्वयं श्रम नहीं करते, श्रमिकों का सम्मान नहीं करते और श्रम करने वालों को कमतर मानते हैं। अर्थात श्रम के बारे में चर्चा करना, परंतु

स्वयं श्रम न करना— यह चरित्र के खोखलेपन की ओर संकेत करता है।

ज्ञान-मीमांसीय दृष्टि

ज्ञान की प्रक्रिया के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद जी का यह मानना है कि "मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। ज्ञान मनुष्य में स्वभाव-सिद्ध है, कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अंदर ही है। हम जो कहते हैं कि मनुष्य 'जानता' है, यथार्थ में, मानसशास्त्र-संगत भाषा में, हमें कहना चाहिए कि वह 'आविष्कार करता है', 'अनावृत' या 'प्रकट' करता है। मनुष्य जो कुछ 'सीखता' है, वह वास्तव में 'आविष्कार करना' ही है। 'आविष्कार' का अर्थ है— मनुष्य का अपनी अनंत ज्ञानस्वरूप आत्मा के ऊपर से आवरण को हटा लेना।...संसार को जो कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह सब मन से ही निकला है। विश्व का असीम ज्ञानभंडार स्वयं तुम्हारे मन में है (विवेकानंद, 1956; 6)। जानना, आविष्कार, सीखना, अनावृत्त करना— ये सभी प्रक्रियाएँ सुनने और पढ़ने में जितनी सहज एवं स्वाभाविक प्रतीत हो रही हैं, समझने और आत्मसात करने में उतनी ही जटिल तथा कठिन हैं। वस्तुत: अंतर्मन को खोज पाना आविष्कार की श्रेणी में आता है, अर्थात जो पहले न जानना, जिससे अनभिज्ञता थी उसे खोज पाना। इस खोज में मनुष्य धीरे-धीरे अपनी आत्मा पर पड़ी अज्ञान की हर परत को हटाता चलता है। तब वह भीतर के 'स्व' को देख पाता है, समझ पाता है। जब 'स्व' से साक्षात्कार होता है तो मुक्ति का द्वार खुलता है। प्रत्येक प्रकार की दुर्बलता, अज्ञानता, बुराई, कमज़ोरी, नकारात्मकता, शिथिलता और अवसाद से मुक्ति। ये सभी दुर्गुण मनुष्य को इस प्रकार घेरे रहते हैं कि 'स्व' मन कहीं खो जाता है, विस्मृत हो जाता है। एक अन्य रोचक तथ्य यह है कि भारतीय मनोविज्ञान की परंपरा भी मनुष्य की आंतरिक शक्तियों में विश्वास रखती है और उसे 'स्वधा' नाम देती है। "ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में, सृष्टिपूर्व काल में स्वधा के आधार पर ही विश्व का आधारभूत तत्व अपना अस्तित्व बनाए हुए था, ऐसा 'आनीदवांत स्वधया तदेकम्' इस पाद में वर्णित है" (द्राविड़, 2007; 22)। इस प्रकार शिक्षा का अर्थ और लक्ष्य है— अपनी अंतर्निहित शक्तियों की पूर्णता को अभिव्यक्त करना, उजागर करना और उन्हें मानव मात्र के कल्याण में लगाना। इस संदर्भ में भारतीय मनोविज्ञान की यह अवधारणा है कि मानव व्यवहार के मूल में जटिल मानसिक क्रियाएँ होती हैं जिनका इंद्रियानुभूति तथ्यों की भाँति पूरी तरह से नहीं किया जा सकता है। ज्ञान की प्रक्रिया में विषयी (अधिगमकर्ता) की भूमिका महत्वपूर्ण है। विषय अपने ज्ञान के लिए विषयी पर निर्भर है लेकिन विषयी स्वयं प्रकाश है और वह अपना ज्ञान स्वयं कर सकता है (अवेद्यत्वेसति अपरोक्ष व्यवहार योग्यत्वम) (चौरसिया, 2007; 4)। भारतीय ज्ञान परंपरा भी शिक्षा को 'अंतस्' का विषय मानती है और सीखने वाले की क्षमताओं में विश्वास व्यक्त करती है।

इस अर्थ में शिक्षा परीक्षा के लिए की गई पढ़ाई भी नहीं है जो परीक्षा के साथ ही समाप्त हो जाए। जीवन से जुड़ी शिक्षा जीवन पर्यंत साथ रहती है, निरंतर जारी रहती है। शिक्षा केवल विषय की पढ़ाई भी नहीं है बल्कि हर विषय को समझने, आत्मसात करने के लिए

रचनात्मक सोच है, विचार है। जीवन की जटिलताओं का सामना करने और उनका समाधान करने में तार्किक निर्णय ही काम आते हैं। तार्किक निर्णय में एक समृद्ध अनुभव ही काम आता है, वह मात्र दो-चार दिनों का प्रतिफल नहीं है, उसे अर्जित करने में बहुत समय लगता है। प्रत्येक मनुष्य अपने तरीकों से उन जटिलताओं के लिए व्यावहारिक समाधान जुटाता है जो उसके अनुभूत सत्य और नवाचार पर निर्भर करते हैं। जितना अधिक अनुभूत सत्य, समृद्ध अनुभव, उतने ही व्यावहारिक एवं उपयोगी समाधान। इसका यह अर्थ भी है कि प्रत्येक विद्यार्थी स्वयं सीखने के लिए प्रवृत्त होता है, स्वयं सीखता चलता है, बड़ों एवं शिक्षकों का दायित्व मात्र इतना है कि वे उसके सीखने की यात्रा के सह-पथिक बनें। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी यही विचार पोषित करती है कि "रोजगार और वैशिक पारिस्थितिकी में तीव्र गति से आ रहे परिवर्तनों की वजह से यह जरूरी हो गया है कि बच्चे, जो कुछ सिखाया जा रहा है, उसे तो सीखें ही और साथ ही वे सतत सीखते रहने की कला भी सीखें (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020; 3)। सतत सीखते रहने की कुशलता शिक्षा के निरंतर जारी रहने वाले स्वरूप के साथ मेल खाती है। यह प्रक्रिया लोकतांत्रिक मूल्यों से संवर्धित होनी चाहिए जिसकी अनिवार्य शर्त है— स्वतंत्रता। यह स्वतंत्रता ही विकास की पहली सीढ़ी है। विद्यार्थियों को सीखने के अवसर भी देने होंगे और उनकी अंतर्निहित शक्तियों पर विश्वास भी रखना होगा, ठीक वैसे ही जैसे शिक्षा नीति! साथ ही उनके कार्यों पर अपनी दृष्टि भी होनी चाहिए जिससे उन्हें आवश्यकतानुसार सहायता प्रदान की जा सके।

सीखने अथवा ज्ञान-प्राप्ति के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है। कई घंटों पुस्तक खोलकर उसमें दृष्टि जमाए रखने से कहीं उत्तम है कि हम कुछ घंटे पढ़ें, पूर्ण एकाग्रता के साथ पढ़ें, लेकिन जितना पढ़ें, उसे आत्मसात भी करते चलें। विद्यार्थी का मन जितना अधिक एकाग्र होगा, ज्ञान-प्राप्ति भी उतनी सक्रिय रूप से होगी। विवेकानंद कहते हैं कि "मैं तो मन की एकाग्रता को ही शिक्षा का यथार्थ सार समझता हूँ– ज्ञातव्य विषयों के संग्रह को नहीं। यदि मुझे एक बार फिर से अपनी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिले तो मैं विषयों का अध्ययन नहीं करूँगा। मैं तो एकाग्रता की और मन को विषय से अलग कर लेने की शक्ति को बढ़ाऊँगा और तब साधन या यंत्र की पूर्णता प्राप्त हो जाने पर इच्छानुसार विषयों का संग्रह करूँगा" (विवेकानंद, 1956)।

यह भी सर्वविदित है कि कुशलतापूर्वक किया गया कार्य ही सफल होता है और इस कुशलता के लिए एकाग्रता के साथ-साथ अभ्यास की भी आवश्यकता होती है। स्वामी विवेकानंद जी एकाग्रता की शक्ति को ही ज्ञान को प्राप्त करने की कुंजी मानते हैं। उनके लिए मन की एकाग्रता ही शिक्षा का यथार्थ सार है। सीखने अथवा ज्ञान-प्राप्ति के लिए एकाग्रतापूर्ण स्वाध्याय की भी आवश्यकता होती है और *तैत्तिरीयोपनिषद्* के नौवें अनुवाक (शांकरभाष्य सहित, 1993, पृष्ठ 49) में इस बात पर बल दिया गया है। स्वाध्याय के दो अर्थ

हैं— स्वयं अध्ययन करना और स्वयं का अध्ययन करना। इन दोनों अर्थों में स्वाध्याय अनिवार्य है—

"ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च
स्वाध्यायप्रवचने च।
तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च च
स्वाध्यायप्रवचने च। ...
स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्य: । तद्धि
तपस्तद्धि तप: ।। १ ।।"

(अर्थात ऋत (शास्त्र आदि द्वारा बुद्धि में निश्चय किया हुआ अर्थ) तथा स्वाध्याय (शास्त्र-अध्ययन) और प्रवचन (अभ्यास अथवा वेदपाठ ब्रह्मयज्ञ) ये अनुष्ठान किए जाने योग्य हैं। सत्य (सत्य भाषण), दम (इंद्रिय दमन) तथा स्वाध्याय और प्रवचन (इन्हें सदा करता रहे)।... स्वाध्याय और प्रवचन ही (कर्तव्य हैं) ऐसा मुद्गल के पुत्र नायक का मत है। अत:वे (स्वाध्याय और प्रवचन) ही तप हैं,वे ही तप हैं।)

यह सर्व विदित है कि किसी भी शैक्षिक प्रक्रिया में स्वाध्याय और अभ्यास आदि अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। स्वयं की क्षमता, गति और स्तर के अनुरूप विद्यार्थी को स्वाध्याय हेतु सम्यक अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। स्वाध्याय की प्रक्रिया में स्वयं अध्ययन, मनन, चिंतन, अपने विचार और राय या मत स्थिर करना सम्मिलित है और तर्क एवं तर्कपूर्ण निर्णय भी।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानंद के अनुरूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 प्रत्येक बच्चे की रचनात्मकता और सीखने की प्रवृत्ति में विश्वास व्यक्त करती है शिक्षा का कार्य बच्चे के भीतर अंतर्निहित पूर्णता को व्यक्त करना है। शिक्षा का लक्ष्य अच्छे इंसान का निर्माण करना है जो तार्किक और रचनात्मक बुद्धि से परिपूर्ण हो। जिसमें मानवीय मूल्य हों और जो अंतत: समाज और राष्ट्र के निर्माण एवं विकास में सहयोग कर सके। इसका अर्थ यह भी है कि केवल विषय पढ़ा देना 'शिक्षा' नहीं है बल्कि इससे और अधिक प्रयास करते हुए बच्चे के संपूर्ण विकास के लिए कार्य करना है। बच्चों के साथ इस प्रकार कार्य करना है कि वे स्वयं सीखें और सीखते रहें। शिक्षक एवं अभिभावक की भूमिका केवल सीखने का उचित वातावरण तैयार करना और बच्चों के सीखने में सहयोग करना है। तार्किक बुद्धि का विकास करने के लिए बच्चों को प्रश्न पूछने और समस्या का समाधान करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है। यह दायित्व भी केवल विद्यालय और शिक्षक का नहीं है बल्कि इसमें परिवार और अभिभावकों को भी अपना कर्तव्य-निर्वहन करना होगा। विषयों के शिक्षण एवं अन्य प्रकार की विद्यालयी गतिविधियों के आयोजन के दौरान चर्चा, प्रश्नोत्तर, वाद-विवाद, संवाद आदि पद्धतियों का प्रयोग करते हुए बच्चों में मानवीय एवं संवैधानिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है, मूल्यों के विकास के लिए अलग से किसी पाठ्यक्रम, विषय और शिक्षण की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के उपरांत विकसित पाठ्यपुस्तकों के पाठों और पाठों पर आधारित अभ्यासों में ऐसे अनेक अभ्यास हैं जिनके माध्यम से बच्चों में तदनुभूति, सहयोग, शिष्टाचार, दूसरों के विचारों का सम्मान करना आदि मूल्यों का विकास किया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

की अनुशंसा 'सीखते रहने की कला सीखना' के क्रियान्वयन करने हेतु स्वामी विवेकानंद का यह विचार भी अनुकरणीय है कि हम बच्चों में एकाग्रता एवं स्वाध्याय करने की प्रवृत्ति एवं कला को बढ़ावा दें।

यह सत्य ही प्रतीत होता है कि जीवन से जुड़ी शिक्षा अंततः जीवन को ही पोषित करती है। मनुष्य जीवन का यह पोषण राष्ट्र के जीवन को भी पोषित करता है। शिक्षा की अनवरत यात्रा में अनुभवों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। इन अनुभवों को प्राप्त करने में अनेक प्रकार की जटिलताएँ, समस्याएँ आती हैं। अत: अनुभवजन्य शिक्षा को जीवन की जटिलताओं, चुनौतियों, संघर्षों की दृष्टि से भी देखा जाता है। इसका कारण यह है कि जीवन की जटिलताएँ और संघर्ष अनेकश: किसी भी व्यक्तित्व को बल और शक्ति प्रदान करते हैं। इस संदर्भ में यह उक्ति सत्य ही प्रतीत होती है कि 'स्वर्ण भी आग में तप कर ही निखरता है।' संघर्ष जितना अधिक, सीखना उतना अधिक और शिक्षा की सार्थकता भी उतनी अधिक। अत: शिक्षा मनुष्य में अंतर्निहित ऊर्जाओं के प्रस्फुटन अथवा अंतस् में निहित शक्तियों को चैतन्यता प्रदान करने की प्रक्रिया है। मनुष्य बनने और बने रहने का नियामक तत्व है— शिक्षा।

संदर्भ

अरोड़ा, पंकज और उषा शर्मा. 2021. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 रचनात्मक सुधारों की ओर*. शिप्रा प्रकाशन, नई दिल्ली.

आप्टे, वामन शिवराम. 1966. *संस्कृत-हिन्दी कोश*. मोतीलाल बनारसीदास. पटना.

उपाध्याय, आचार्य बलदेव. 1979. *भारतीय दर्शन की रूपरेखा*. चौखंभा ओरिएंटलिया, वाराणसी.

काटदरे, इन्दुमति. 2017. *भारतीय शिक्षा : संकल्पना एवं स्वरूप*. पुनरुथान प्रकाशन सेवा ट्रस्ट, अहमदाबाद.

तैत्तिरीयोपनिषद् (सानुवाद शांकरभाष्य). 1993. गीताप्रेस, गोरखपुर.

द्राविड़, नारायण शास्त्री और राजेश कुमार चौरसिया. 2007. *भारतीय मनोविज्ञान*. विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर, मध्य प्रदेश.

सलूजा, चांद किरण. 2023. *शिक्षा : भारतीय परिप्रेक्ष्य*. संस्कृत संवर्धन प्रतिष्ठानम, नई दिल्ली.

सिन्हा, पवन. 2019. *शिक्षा के द्वंद्व*. प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली.

स्वामी आत्माप्रियानंद (नव संवत्सर 2065. विक्रमी, युगाब्द 5110). *स्वामी विवेकानंद के शिक्षा-विषयक विचार*. रामकृष्ण मिशन संस्कृति संस्थान, कोलकाता.

स्वामी विवेकानंद. 1956. *शिक्षा (तृतीय संस्करण)*. श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर.

शिक्षा मंत्रालय. 2020. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*. शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली..

स्वामी चिन्मयानंद. 1962. *तैतिरिय उपनिषद पर प्रवचन*. चिन्मया पब्लिकेशन ट्रस्ट, मद्रास.